भाषा दर्शन: सिद्धांत और व्यवहार

फील्ड-स्तर का दृष्टिकोण

लेखक: डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा, राष्ट्रीय सलाहकार – बहुभाषी शिक्षा, लैंग्वेज एंड लर्निंग फ़ाउंडेशन, नई दिल्ली
हिन्दी अनुवाद: संजय गुलाटी, सीनियर स्पेशलिस्ट (बहुभाषी शिक्षा), लैंग्वेज एंड लर्निंग फ़ाउंडेशन, नई दिल्ली

भाषा का दर्शन, दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जो शब्दों, अर्थ और वास्तविकता के बीच के संबंध को समझने की कोशिश करती है। यह देखती है कि भाषा दुनिया को किस प्रकार निरूपित करती है, अर्थ का आदान-प्रदान कैसे होता है और मनुष्य भाषाई अभिव्यक्तियों को किस प्रकार समझते और उपयोग करते हैं। समय के साथ कई महत्वपूर्ण सिद्धांत विकसित हुए हैं, जो भाषा की प्रकृति को– कभी तर्क और अर्थ के स्तर पर, तो कभी व्यवहारिक, संज्ञानात्मक और व्याख्या के अलग–अलग नजरिए से समझाते हैं। आइए भाषा की प्रकृति को समझने का प्रयास करते हैं।

फ्रेगे: अर्थ (Sense) और संदर्भ (Reference)

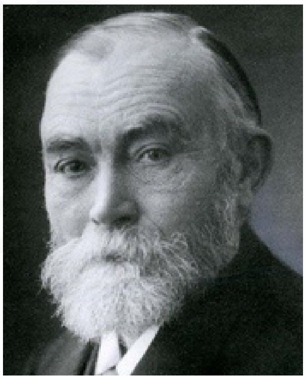

सबसे शुरुआती और महत्वपूर्ण चिंतकों में से एक **गॉटलोब फ्रेगे** (Gottlob Frege) हैं, जिन्होंने अर्थ (सिन/Sinn) और संदर्भ (बेडॉयटुंग/Bedeutung) के बीच के अंतर को समझाया। फ्रेगे ने इस प्रश्न को संबोधित किया कि किस प्रकार दो अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ जो एक ही वस्तु की ओर इशारा तो करती हैं, परन्तु उनका अर्थ अलग हो सकता है। उदाहरण के लिए, "सुबह का तारा" और "शाम का तारा" दोनों ही शुक्र ग्रह की ओर संकेत करते हैं, लेकिन दोनों वाक्यांशों से हमारे मन में उठने वाली छवि और अर्थ अलग होते हैं। फ्रेगे के अनुसार, शब्दों का एक "संदर्भ" होता है, जो वास्तव में उस वस्तु को बताता है, जिसकी ओर शब्द इशारा कर रहा है, और एक "अर्थ" होता है, जो उस वस्तु को समझाने या प्रस्तुत करने का तरीका है। इस तरह उन्होंने समझाया कि भाषा एक ही वस्तु का उल्लेख करते हुए भी किस प्रकार अर्थ में सूक्ष्म अंतर व्यक्त कर सकती है।

रसेल: विवरण का सिद्धांत

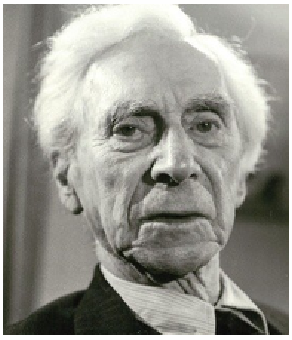

तार्किक विश्लेषण को आगे बढ़ाते हुए **बर्ट्रेंड रसेल** (Bertrand Russell) ने विवरण का सिद्धांत (Theory of Descriptions) दिया, जो उन वाक्यों की समस्या से जुड़ा है, जिनमें किसी ऐसी वस्तु का ज़िक्र होता है जो वास्तव में मौजूद ही नहीं है। उदाहरण के लिए वाक्य "फ्रांस का वर्तमान राजा गंजा है" – जबकि फ्रांस में कोई राजा नहीं है। ऐसे वाक्य पहली नज़र में अर्थ की दृष्टि से उलझन पैदा करते हैं।

रसेल ने कहा कि ऐसे वाक्यों को तार्किक संरचना के रूप में समझा जा सकता है, जिनके सत्य या असत्य होने का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि जिस व्यक्ति या वस्तु का उल्लेख है, वह वास्तव में मौजूद है या नहीं। इस सिद्धांत से उन्होंने अर्थ और संदर्भ से जुड़ी कई उलझनों को सुलझाने की एक रूपरेखा दी।बातें बोल रहा था।

विट्गेंस्टाइन: भाषा का उपयोग

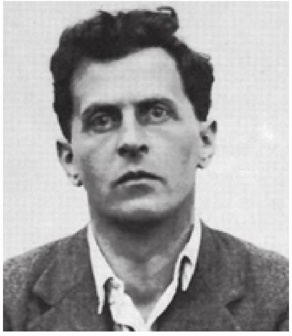

लुडविग विट्गेंस्टाइन (Ludwig Wittgenstein) ने भाषा पर एक अलग तरह की सोच प्रस्तुत की। उनके शुरुआती काम में भाषा को वास्तविकता की तार्किक तस्वीर बताया गया, जहाँ शब्द वस्तुओं और तथ्यों से मेल खाते हैं। बाद के विचारों में उन्होंने इस दृष्टि को बदल दिया और कहा कि किसी शब्द का अर्थ उसके "उपयोग" (use) से बनता है। यानी शब्द का अर्थ यह देखकर समझा जाता है कि लोग उसे रोज़मर्रा की ज़िंदगी में कैसे इस्तेमाल करते हैं, जैसे औज़ारों की पेटी में रखे अलग–अलग औज़ार। उदाहरण के लिए "खेल" शब्द की कोई एक तय परिभाषा नहीं दी जा सकती; हम उसे उसके अलग–अलग संदर्भों में होने वाले प्रयोग से समझते हैं। इस तरह विट्गेंस्टाइन ने भाषा के अमूर्त तार्किक संरचनाओं के बजाए सामाजिक और व्यावहारिक पक्ष पर जोर दिया।

ऑस्टिन और सिरल: स्पीच एक्ट सिद्धांत

इसी दिशा को आगे बढ़ाते हुए **जे. एल. ऑस्टिन** (J. L. Austin) और **जॉन सिरल** (John Searle) ने स्पीच एक्ट सिद्धांत (Speech Act Theory) विकसित किया। उनका कहना था कि भाषा सिर्फ दुनिया का वर्णन नहीं करती, बल्कि काम भी करती है। उदाहरण के लिए "मैं माफी माँगता/माँगती हूँ" कहना केवल माफी का वर्णन नहीं, बल्कि माफी माँगने की क्रिया ही है। ऑस्टिन और सिरल ने ऐसे भाषिक कार्यों को अलग–अलग प्रकारों में बाँटा, जैसे घोषणा करना, आदेश देना, वादा करना, अनुरोध करना आदि। इससे यह बात साफ हुई कि भाषा मानव व्यवहार और सामाजिक संबंधों से अलग नहीं है, बल्कि उन्हीं का हिस्सा है। इस नजरिए में अर्थ को केवल 'वस्तु का निरूपण' न समझते हुए "कार्य और व्यवहार" के रूप में समझा गया।

चॉम्स्की: सार्वभौमिक व्याकरण

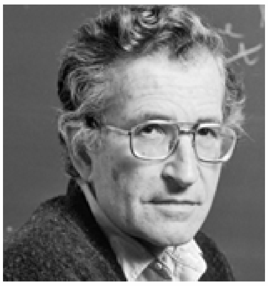

संज्ञानात्मक (cognitive) भाषा-विज्ञान में **नोम चॉम्स्की** (Noam Chomsky) ने सार्वभौमिक व्याकरण (Universal Grammar) का विचार दिया। उन्होंने बताया कि मनुष्य के भीतर जन्मजात भाषाई–क्षमता होती है, जो बच्चों को व्याकरण के जटिल नियम तेजी से और प्रभावी रूप से सीखने में मदद करती है। दार्शनिक रूप से यह विचार भाषा और मस्तिष्क के संबंध को लेकर कई सवाल उठाता है – जैसे कि भाषा का अध्ययन हमें मानव विचार की अंदरूनी संरचनाओं को समझने में कैसे मदद करता है। इस तरह भाषा केवल बाहरी व्यवहार नहीं, बल्कि हमारी सोच की गहराई से जुड़ी प्रक्रिया भी है।

सॉस्युर और डेरीदा: संकेत, अर्थ और व्याख्या

संरचनात्मक स्तर पर **फेरदिनां द सॉस्युर** (Ferdinand de Saussure) ने भाषा को संकेतों (signs) की एक व्यवस्था के रूप में समझाया। उनके अनुसार शब्दों का अर्थ सीधे–सीधे वास्तविकता से नहीं, बल्कि अन्य शब्दों से उनके अंतर (difference) के कारण बनता है। यानी भाषा के भीतर के संबंधों से अर्थ पैदा होता है। बाद में **जाक डेरीदा** (Jacques Derrida) जैसे उत्तर–संरचनावादी (post-structuralist) विचारकों ने स्थिर और तय अर्थ की धारणा को चुनौती दी। उन्होंने कहा कि अर्थ हमेशा खुला, बदलने वाला और व्याख्या पर निर्भर होता है। **देरिदा** (Derrida) ने इस बात पर जोर दिया कि अर्थ कभी भी पूरी तरह से स्थिर नहीं होता है। किसी भी पाठ को कई तरीकों से पढ़ा जा सकता है, जो भाषा की जटिल और गतिशील प्रकृति को को दर्शाता है।

अग्निहोत्री: भाषा, समाज और बहुभाषिकता

रमाकांत अग्निहोत्री (Ramakant Agnihotri) ने भाषा को एक बंद और निश्चित प्रणाली के स्थान पर सामाजिक और सांस्कृतिक अभ्यास (practice) के रूप में देखा। उनका मानना है कि बहुभाषिकता मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति है और उसे शिक्षा में सम्मान मिलना चाहिए। भारत जैसे बहुभाषिक देश में लोग रोजमर्रा की जिंदगी में कई भाषाएँ इस्तेमाल करते हैं। अग्निहोत्री बताते हैं कि बहुभाषिकता कोई समस्या नहीं, बल्कि भाषा सीखने और समझने की बड़ी ताकत है। भारतीय समाज की बहुभाषिकता को देखते हुए अग्निहोत्री यह साबित करते हैं कि सभी भाषाएँ एक–दूसरे पर निर्भर हैं और एक–दूसरे को मदद देती हैं। स्कूलों में भाषा –शिक्षण के लिए यह बहुभाषिक वास्तविकता एक संसाधन की तरह उपयोग की जानी चाहिए। किसी भाषा को उसकी संरचना और कार्य के स्तर पर दूसरी भाषा से अलग कर नहीं देखा जा सकता। इस तरह भाषाएँ मिलकर एक बहुभाषिक पारिस्थितिकी (multilingual ecology) बनाती हैं, जो समाज के असली भाषा–उपयोग में दिखाई देती है।

भाषा दर्शन से मिलने वाले मुख्य संकेत

संक्षेप में देखें तो भाषा का दर्शन कई तरह के विचारों को जोड़ता है। कुछ चिंतक जैसे फ्रेगे (Frege) और रसेल (Russell) भाषा के तर्क, सत्य और शब्दों तथा वास्तविकता के संबंध पर जोर देते हैं। वहीं विट्गेंस्टाइन (Wittgenstein), ऑस्टिन (Austin) और सिरल (Searle) भाषा के रोजमर्रा के उपयोग, सामाजिक संदर्भ और उसके कार्यात्मक पहलू को महत्वपूर्ण मानते हैं। चॉम्स्की (Chomsky) भाषा के पीछे छिपी मानसिक/संज्ञानात्मक संरचनाओं की बात करते हैं, जबकि सॉस्युर (Saussure) और डेरीदा (Derrida) अर्थ को संबंधों, व्याख्या और बदलाव की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। ये सभी मिलकर यह समझने में मदद करते हैं कि भाषा विचार, क्रिया और वास्तविकता के बीच पुल की तरह काम करती है।

अंत में, भाषा का दर्शन यह दिखाता है कि लोगों के बीच का आपसी संप्रेषण कितना समृद्ध और जटिल है। भाषा केवल दुनिया का वर्णन करने वाले संकेतों की प्रणाली नहीं, बल्कि सोच को आकार देने, क्रिया को व्यक्त करने और सामाजिक संदर्भों में अर्थ बनाने का औजार भी है। इन विविध सिद्धांतों को समझकर हम यह बेहतर रूप में देख पाते हैं कि मनुष्य किस प्रकार अलग-अलग तरीकों से शब्द, विचार और वास्तविकता के बीच के गहरे रिश्ते को समझने की कोशिश करता रहा है।

भाषा, शिक्षक और कक्षा की हकीकत

अब जरा सोचें कि हम, जो अपने को "भाषा–योद्धा" या भाषा के पक्षधर मानते हैं, क्या सचमुच भाषा को उसी तरह समझते हैं, जैसा इन विचारकों और भाषा–वैज्ञानिकों ने बताया है? बच्चे अपने अनुभवों में भाषा का उपयोग इन सभी परिभाषाओं के भीतर रहकर कर पाते हैं। लेकिन जब वे स्कूल की औपचारिक भाषा से बंध जाते हैं, तो बहुत बार भाषा दर्शन के ये बुनियादी विचार पीछे छूट जाते हैं और सीखना केवल पढ़ने–लिखने की तकनीक तक सीमित रह जाता है। भाषा शिक्षक और उनके मार्गदर्शक यदि इन विचारों को पढ़ें, समझें, चर्चा करें और कक्षा तथा समाज में इन्हें लागू करें, तो वे भाषा के सिद्धांत और व्यवहार दोनों को बच्चों के सीखने से जोड़ सकते हैं।

प्राय: भाषा सीखने – सिखाने को हम सीखने के लक्ष्य के रूप में उपयोग न करते हुए केवल उसे एक "औज़ार" के रूप में इस्तेमाल करते हैं। अधिकतर मामलों में भाषा दूसरे विषयों को सीखने और सिखाने का माध्यम बनकर रह जाती है। अधिकांशत: समझ की एक परत कहीं खो जाती है कि भाषा स्वयं मानवीय संप्रेषण का मुख्य उद्देश्य और लक्ष्य भी है। किसी भी क्रिया का उद्देश्य उस क्रिया के साधन से जुड़ा होता है, भाषा भी उसी तरह एक प्रमुख साधन है, जो उद्देश्य और साधन – दोनों में भीतर तक जुड़ी रहती है।

भाषा, समाज और सांस्कृतिक संदर्भ

बहुत बार हम भाषा को सीखने–सिखाने का औज़ार मानते समय उसके सामाजिक यथार्थ और सांस्कृतिक संदर्भ पर ध्यान नहीं देते हैं। जिन दार्शनिक विचारों पर हमने बात की है, वे बताते हैं कि भाषा हमेशा उद्देश्य, अर्थ और संदर्भ के साथ जुड़ी होती है। हमारे रोज़मर्रा के जीवन में भाषा तभी पूर्ण अर्थ लेती है जब वह किसी स्थिति, संबंध और अनुभव से जुड़ी हो।
कक्षा में भाषा–शिक्षण को देखते समय यह बात सामने आती है कि शिक्षक और विद्यार्थी दोनों अक्सर इस बात के प्रति सचेत नहीं रहते कि भाषा का उपयोग, उसका उद्देश्य, उसका अर्थ – ये सब बोलने की क्रिया (speech act) और बोलने की स्थिति (speech situation) में ही बने रहते हैं। भाषा का दर्शन हमें याद दिलाता है कि केवल शुद्ध व्याकरण से भाषा नहीं समझी जा सकती; उसके सामाजिक और सांस्कृतिक उपयोग को भी देखना जरूरी है।

बच्चों की भाषा और भाषा–अधिगम

एक शिक्षक को बच्चों के दैनिक जीवन में उपयोग की जाने वाली भाषा, और भाषा-अर्जन (language acquisition) व सीखने के लिए कक्षा में भाषा के उपयोग के बारे में पता होना चाहिए। बच्चे जिस भाषा को अपने घर, समुदाय और खेल में स्वाभाविक रूप से सीखते हैं, वह सामाजिक संदर्भ में “अर्जित” (acquired) भाषा है। यह प्रक्रिया बच्चों के भाषा–सीखने को उनके अनुभवों के साथ जोड़ती है, वहीं कक्षा में पढ़ाई जाने वाली भाषा प्राय: पाठ्यपुस्तक से पाठ–सामग्री के रूप में “सिखाई” जाती है।
इसलिए शिक्षक को कक्षा में बच्चों की भाषा ध्यान से सुननी चाहिए और देखना चाहिए कि वे अपने माता–पिता और साथियों से बात करते समय भाषा का कितना सोच–समझकर, अर्थपूर्ण और परिस्थिति–अनुकूल उपयोग करते हैं। बच्चों के वाक्य केवल व्याकरण की दृष्टि से ही सही नहीं होते, वे उनके अनुभवों यदि शिक्षक बच्चों के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों को भाषा–शिक्षण से जोड़ें, तो वे पढ़ाने के उद्देश्य को सीखने के लक्ष्य से जोड़ सकते हैं। बच्चों के अनुभव भाषा–सीखने का बड़ा भंडार होते हैं, जो शिक्षक को संदर्भ और अर्थ के साथ भाषा सिखाने में मदद कर सकते हैं। इस दृष्टि से शब्द, अर्थ और वास्तविकता – तीनों मिलकर सीखने के उद्देश्य और लक्ष्य को संप्रेषित करने के लिए ज़रूरी हैं। यहाँ शिक्षक को याद रखना चाहिए कि “भाषा जानना” और “भाषा के बारे में जानना” – दोनों अलग बातें हैं। सामाजिक संदर्भ में भाषा जानना एक अंतर्निहित (implicit) ज्ञान है, जबकि कक्षा में भाषा के नियम, परिभाषा, व्याकरण आदि “स्पष्ट” (explicit) ज्ञान के रूप में आते हैं। स्कूल में अक्सर भाष को “व्याकरण” के रूप में पढ़ाया जाता है। यदि शिक्षक बच्चों के भाषा–अनुभवों को नहीं समझेंगे, तो वे भाषा–शिक्षण में सफल नहीं हो सकते। असल शिक्षण तब होता है, जब बच्चों के अनुभव कक्षा के अनुभव से जुड़ते हैं।

भारतीय प्राथमिक कक्षाओं की स्थिति और भाषा

अब सवाल उठता है कि भारत के प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा की वर्तमान स्थिति क्या है? क्या शिक्षक सचमुच बच्चों के पूर्व अनुभवों को पढ़ाने–सीखने में ध्यान में रखते हैं? क्या विद्यार्थियों को यह अवसर मिलता है कि वे अपने अनुभवों को खुले रूप से शिक्षक के साथ साझा कर सकें?

शिक्षक किस तरह बच्चों के अनुभवों को पाठ्य–पुस्तक में दिए गए ज्ञान से जोड़ते हैं? समुदाय का ज्ञान – जैसे लोक–कथाएँ, लोक–भाषाएँ, स्थानीय शब्द, रोजमर्रा की कहावतें – बच्चों के सीखने को समृद्ध करने के लिए किस हद तक उपयोग में लाया जाता है?

शिक्षक जब किसी विषय को पढ़ाते हैं, तो वे कौन–से सांस्कृतिक तरीके अपनाते हैं और किस तरह सीखने के सामाजिक तरीकों को आधुनिक पाठ्यक्रम में समाहित कर पाते हैं? भाषा–शिक्षण का उद्देश्य ऐसे दार्शनिक विचारों से जुड़ा होना चाहिए जो बच्चों की कल्पना, रचनात्मकता और भाषा–कौशलों का विकास करे, जिससे वे स्वतंत्र रूप से पढ़ सकें, लिख सकें और अर्थ–निर्माण (meaning-making) और स्वयं को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया में गंभीरता से सोच सकें। यदि सीखने के सामाजिक पक्ष को शैक्षणिक भाषा से नहीं जोड़ा जाता है, तो बच्चों के सांस्कृतिक संदर्भों से कटी हुई साक्षरता कौशलों को प्राप्त करने की प्रक्रिया, उन्हें अपने सीखने में सहज और जुड़ाव महसूस कराने में असफल रह सकती है।

लैंग्वेज ऐंड लर्निंग फ़ाउंडेशन की रूपरेखा

लैंग्वेज ऐंड लर्निंग फ़ाउंडेशन (Language and Learning Foundation), नई दिल्ली भाषा के बुनियादी साक्षरता और संख्याज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाली एक अग्रणी संस्था है। संस्था का द्वारा विकसित रूपरेखा का उद्देश्य यह है कि साक्षरता को बच्चों के सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़ा जाए और मौखिक भाषा तथा पढ़ने के कौशलों के विकास को साथ–साथ देखा जाए। इस रूपरेखा में जोर दिया गया है कि ध्वनियों (sounds) और प्रतीकों (symbols) से जुड़ा "डिकोडिंग" और शुरुआती लेखन केवल यांत्रिक अभ्यास बनकर न रह जाए, बल्कि उसे बच्चों के लिए सार्थक और संदर्भित अनुभव बनाया जाए।

साक्षरता के समर्थक जब निरक्षरता के खिलाफ काम करते हैं, तो उन्हें भाषा–सीखने के दो बेहद महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान देना होता है – एक सामाजिक संदर्भ और दूसरा शैक्षणिक/विद्यालयी संदर्भ। केवल सैद्धांतिक ज्ञान या अलग-थलग अभ्यासों पर जोर देना पर्याप्त नहीं है। साक्षरता कौशलों के विकास के लिए आवश्यक है कि यह बच्चों के जीवन के सामाजिक ताने-बाने में मजबूती से निहित हो, जिसमें शिक्षक, माता-पिता और समुदाय की भूमिकाएँ महत्वपूर्ण होती हैं। जब भाषा, समाज और संस्कृति एक साथ कक्षा में जगह पाते हैं, तब साक्षरता का अनुभव बच्चों के लिए जीवंत, समावेशी और अर्थपूर्ण बन सकता है।

साक्षरता का लक्ष्य केवल अक्षर पहचानना, शब्द पढ़ लेना या नियम के अनुसार वाक्य लिख पाना नहीं है, बल्कि बच्चों के भीतर रचनात्मकता, कल्पनाशीलता और तर्क–क्षमता को विकसित करना है। सच्ची साक्षरता तब दिखाई देती है, जब बच्चा किसी पाठ के सतही अर्थ के साथ–साथ उसके भीतर छिपे हुए अर्थ, संकेत और संदर्भ को भी देख सके और उस पर सवाल उठा सके और उस पर प्रश्न कर सके। इस दृष्टि से साक्षरता का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि बच्चों में तार्किक सोच और आलोचनात्मक चिंतन का विकास हो – वे पढ़े हुए को बिना सोचे मान न लें, बल्कि तुलना करें, विश्लेषण करें, तर्क दें और असहमति भी दर्ज कर सकें। जब बच्चे पाठ के साथ सक्रिय रूप से जुड़ते हैं तो वे केवल अर्थ ग्रहण नहीं करते, बल्कि नए अर्थ रचते हैं – अपने अनुभव, समाज और कल्पना के आधार पर नए पाठ, नई कहानियाँ, नए तर्क और नए सवाल गढ़ते हैं। साक्षरता का एक बड़ा परिणाम यही है कि बच्चा अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को भाषा में साफ़, सुसंगत और सार्थक ढंग से व्यक्त कर सके – बोलकर भी और लिखकर भी। इस तरह नई रचना करना, गहरे और छिपे अर्थ को पहचानना, और अपने विचारों को भाषा के रूप में ढालना – यही आधुनिक साक्षरताओं के मूल लक्ष्य हैं, जिन्हें भाषा–शिक्षा की पूरी प्रक्रिया में केंद्र में रखा जाना चाहिए।

- **संदर्भ:**

- *Agnihotri, Ramakant. Multilinguality, Education and Harmony. Hyderabad: Orient Blackswan, 2014.*
- *Austin, J. L. (1962). How to do things with words. Oxford: Oxford University Press.*
- *Chomsky, N. (1965). Aspects of the theory of syntax. Cambridge, MA: MIT Press.*
- *Derrida, J. (1976). Of Grammatology (G. C. Spivak, Trans.). Baltimore, MD: Johns Hopkins University Press*
- *Peter Geach and Max Black (eds. & trans.), (1952), Translations from the Philosophical Writings of Gottlob Frege. Oxford: Basil Blackwell.*
- *Russell, B. (1956). On denoting. In R. C. Marsh (Ed.), Logic and knowledge: Essays 1901–1950. London: George Allen & Unwin.*
- *Searle, J. R. (1969). Speech acts: An essay in the philosophy of language. Cambridge: Cambridge University Press.*
- *Saussure, F. de. (1959). Course in general linguistics (W. Baskin, Trans.). New York: McGraw-Hill.*
- *Wittgenstein, L. (1922). Tractatus Logico-Philosophicus. London: Routledge & Kegan Paul.*

LANGUAGE and LEARNING FOUNDATION

लेखक परिचय:

डॉ. मिश्रा कुमार मिश्रा वर्तमान में लैंग्वेज एंड लर्निंग फाउंडेशन, नई दिल्ली में बहुभाषी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय सलाहकार के रूप में कार्यरत हैं। वर्तमान में वे फोकलोर फ़ाउंडेशन, भुवनेश्वर (ओडिशा) की पत्रिका 'लोकरत्न' के मुख्य संपादक हैं। साथ ही वे साहित्य अकादमी, नई दिल्ली की जनजातीय साहित्य सलाहकार समिति के सदस्य भी हैं।

डॉ. मिश्रा ओडिशा सरकार में वर्ष 1996 से 2010 तक बहुभाषी शिक्षा (Multilingual Education) के राज्य समन्वयक के रूप में कार्यरत रहे हैं।

डॉ. मिश्रा भारत के एक प्रसिद्ध लोक-साहित्य विशेषज्ञ (Folklorist) हैं। ओडिशा के लोक-साहित्य पर उनके प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं — Visioning Folklore (2002), Saora Tales and Songs (2005), Oral Epics of Kalahandi (2007), Oral Poetry of Kalahandi (2008) तथा Folktales of Odisha (2013)।

लोक-साहित्य और बहुभाषी शिक्षा के क्षेत्र में अपने कार्यों के अंतर्गत उन्होंने चीन, दक्षिण कोरिया, थाईलैंड, बांग्लादेश और नेपाल की विभिन्न विश्वविद्यालयों का दौरा किया है। डॉ. मिश्रा को वर्ष 1999 में ओडिशा साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा वर्ष 2009 में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा प्रदत्त राष्ट्रीय वीर शंकर शाह–रघुनाथ शाह पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त, उन्हें वर्ष 2001 में फिनलैंड के तुर्कु स्थित कालेवाला संस्थान (Kalevala Institute) द्वारा फिनलैंड के महाकाव्य 'कालेवाला' के हिंदी/ओड़िया अनुवाद के लिए सम्मानित किया गया।

डॉ. मिश्रा ने ए. के. रामानुजन की पुस्तक Folktales from India का ओड़िया अनुवाद (2005) किया है तथा हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति (2006) का भी अनुवाद किया है।